

## रहीम : इतिहास और वर्तमान की दहलीज पर

डॉ. रचना बिमल,

स. प्रोफेसर,  
सत्यवती महाविद्यालय,  
दिल्ली विश्वविद्यालय

भूमंडलीकरण और बाजारवाद के मिलन से अपनी उपभोक्तावादी संस्कृति के दौर में मानवीय संवेदनाएँ छीज रही हैं। धार्मिक उन्माद और साम्प्रदायिकता मानव को मानव बनाने वाले प्रेम, सौख्य और सौहार्द्र जैसे कोमल भावों को उन्मूलित करके आतंकवाद की विष वेल का रोपण करने वाले 'राहु-केतु' बन गए हैं जो समय-समय पर मानवता पर ग्रहण लगाते रहते हैं। भय, आशंका, अविश्वास, स्वार्थपरकता, पाखंड, झूठ और बेइमानी ने आम आदमी के भीतर पैठ बना ली है। समकालीन जीवन विसंगतियों और विडम्बनाओं के बीच टूटन, घुटन, विखंडन और अलगाव के भंवर में फँसकर रह गया है। व्यष्टि के स्तर पर जीवन त्रासदी में बदल रहा है तो समष्टि के स्तर पर 'पृथ्वी' ही हॉफने लगी है। अन्तरराष्ट्रीय घातक प्रवृत्तियाँ छद्म और स्पष्ट दोनों रूपों में विश्व के लिए खतरा उत्पन्न कर रही हैं। राष्ट्र के रूप में हम ह्रासमान हैं। सदियों की गुलामी के बाद मिली स्वतंत्रता खतरे में आन पड़ी है। राजनीतिक स्वार्थ और सत्ता की अहंमन्यता के कारण हम फिर से हिन्दू-अहिन्दू, हिन्दी-अहिन्दी, भारतीय-भारतीयेत्तर, बौद्धिक और व्यावसायिक अनुदारता जैसे भंवर में फँसकर रह गए हैं। हमारा लोकतंत्र क्षेत्रीयता, जातिवाद, सम्प्रदायवाद, भाषावाद की जंजीरों में जकड़ता जा रहा है। सामाजिक और सांस्कृतिक असहिष्णुता हमें धीरे-धीरे नष्ट कर रही है। ऐसे में साहित्य से ही उम्मीद बंधती है कि वह अंधेरे में रोशनी दिखाने का काम करें किन्तु विमर्शों की शिलाओं पर सर पटकते उत्तर आधुनिकतावादी एवं

विचारधाराबद्ध साहित्य में यथा स्थितियों का तो विशद् वर्णन मिलता है किन्तु स्थिति परिवर्तन का मार्ग नहीं। सम्भवतः इसीलिए इस युग में (विशेषकर हिन्दी साहित्य में) कोई कालजयी रचना नहीं मिलती जो हमारा मार्गदर्शन कर सके। कहते हैं कि वर्तमान समय पर यदि कुहासा छाया हो तो हमें अतीत की ओर दृष्टि डाल उससे दिशा-निर्देश ले लेने चाहिए ताकि पुनः एक नई शुरुआत की जा सके। वैसे भी दर्शन और साहित्य के क्षेत्र में हमारा अतीत आरम्भ से अत्यन्त समृद्ध रहा है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास जिस केन्द्रीय वंश वल्ली से बंधा है वह भक्तिकाल है। अब्दुरहीम खानखाना इसी काल के सिद्ध कवि थे, जिन्हें जनमानस प्रेम से रहीम कहकर पुकारता है। भक्तिकाल में ही भारतीय संस्कृति की समग्र चेतनामयी वाणी को भी संगीतात्मक अभिव्यक्ति मिली है। धर्म, साहित्य, राजनीति, संस्कृति आदि के मूल में सदा से व्यक्ति होता है जिसे पूर्ण मानव के रूप में परिमार्जित एवं प्रतिष्ठित करने का संघर्ष चलता रहता है। इस संघर्ष की सफलता इस बात में निहित है कि मनुष्य स्वयं को पहचान ले। यह पहचान अच्छाई के साथ-साथ बुराई की भी होनी चाहिए ताकि हम बुराई को छोड़कर सार्थक जीवन जी सकें। बुराइयों की पहचान करना ही सबसे कठिन कार्य है। भक्तिकाल की महत्ता इस बात में है कि इस युग में मनुष्य ने स्वयं को पहचाना है— 'मो सम कौन कुटिल खल कामी।' आज के युग की सबसे

बड़ी विडम्बना भी यही है कि मनुष्य कुटिल, खल और कामी होने पर भी स्वयं को नहीं पहचानता। इन बुराइयों को दूर करने का प्रयास करना तो दिवास्वप्न बन जाता है। भक्तिकाल का वैशिष्ट्य ही यही है कि मनुष्य स्वयं को 'पतितन को टीको' कहकर ही चुप नहीं हो जाता बल्कि इन बुराइयों से मुक्त होने के लिए छटपटाता भी है। इसी कारण भक्तिकालीन काव्य मानवीय संचेतना को जागृत कर जीवन को आत्मा के व्यापक सौंदर्य के निकट ले जाता है। मनुष्य के भावों को अनुभव की आँच में तपाकर शुद्ध-बुद्ध बनाने के लिए मानसिक तप कराता है। भारतीय तत्त्व-चिंतन में 'भावसंशुद्धि' को अति महत्त्व दिया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है—

**मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्म विनिग्रहः।**

**भाव संशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।।<sup>1</sup>**

अर्थात् मन की प्रसन्नता, सौम्यता, मौन (मननशीलता) मनोनिग्रह और मनोगत भावों की पूर्ण रूप से शुद्धता रूपी गुणों की साधना ही मानसिक तप है। इस भाव संशुद्धि का मूलाधार स्वार्थ और अहंकार के त्याग तथा उदारता और परोपकार के वरण में छिपा होता है। एक बार मनुष्य की भावसंशुद्धि हो जाए तो फिर उसके भीतर किसी प्रकार का भेदभाव, दुराग्रह-पूर्वाग्रह, संकुचिता नहीं रह पाती। रहीम का काव्य आज की हमारी ज्वलंत समस्याओं का समाधान इसी 'भावसंशुद्धि-शक्ति' से निर्मित होने के कारण दे पाता है। यह शाश्वत सत्य है कि सभी प्रकार के भ्रष्टाचार-दुराचार-अनाचार, असहिष्णुता, कट्टरता, हिंसा, अहंमन्यता, उग्रता से त्रस्त मानवता की मुक्ति, संतुष्टि, समृद्धि 'भावसंशुद्धि' में ही निहित है। यही तृष्णाओं की दावाग्नि और आकांक्षाओं पर भी लगाम लगा सकती है। भावसंशुद्धि के अभाव में ही आज की उपभोक्तावादी बाजारवादी अपसंस्कृति फैल रही है। रहीम तो भावशुद्ध मन से एक छोटी सी

उक्ति में ही इस सम्पूर्ण दर्शन का निरूपण कर देते हैं—

**चाह गई चिंता मिटी, मनुआ बेपरवाह। जिनको  
कछू न चाहिए, वे साहन के साह।।<sup>2</sup>**

साहित्य चाहे किसी भी युग, देश अथवा किसी भी भाषा का क्यों ना लिखा गया हो, देखना यह होता है कि उसके केन्द्र में मनुष्य है या नहीं? यदि उसके केन्द्रक में मनुष्य विद्यमान है तब ऐसा साहित्य हर युग में प्रासांगिक होता है। रहीम के रचना संसार का प्रतिपाद्य तो हर दृष्टि से मनुष्य ही है जिसकी मूल्यवादी चेतना को संपुष्ट करने में वे जीवन पर्यन्त लगे रहें। यही बिन्दू रहीम को आज भी प्रासांगिक बनाता है।

भक्तिकाल मात्र हिन्दू-नवजागरण का काल नहीं है। वह वृहद् अनुराग का काल है, जिसमें हिन्दू-मुसलमान का भेद मिटाने के भी प्रयास हुए, जिससे साधारण मानव मनोवृत्ति में भी असाधारण-अलौकिक की सम्भावना देखी गई। अब्दुरहीम खानखानाँ इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। रहीम का पालन-पोषण अकबर ने (अपने संरक्षक बैरम खॉ की मृत्यु के उपरान्त, जिनके पुत्र रहीम थे) शहजादों की तरह किया था। प्रतिभावान बालक रहीम ने फारसी, अरबी, तुर्की, संस्कृत और हिन्दी में निपुणता प्राप्त की। अवधी, ब्रज और खड़ी बोली पर उनका पूर्ण अधिकार था। उन्होंने इन तीनों भाषाओं के साथ-साथ संस्कृत भाषा में भी काव्य रचनाएँ की हैं। कलम के साथ-साथ रहीम तलवारबाजी में भी दक्ष थे। वीरता और काव्य सृजन की प्रतिभा रहीम को रिक्थ में प्राप्त हुई थी। वे शास्त्र और शस्त्र का युग्म थे। इसीलिए मात्र 11 वर्ष की आयु में रहीम ने काव्य सृजन आरम्भ किया तो 16 वर्ष की अवस्था में युद्धभूमि में विजय यात्राओं का प्रारम्भ, जो 72 वर्ष की आयु तक अनवरत चलता रहा। यहाँ रहीम का व्यक्तित्व दो विपरीत ध्रुवों का प्रतीक बन जाता है। एक ओर रण-भूमि में मृत्यु का तांडव करने वाला, शत्रु-दल में त्राहि

मचाने वाला योद्धा तो दूसरी ओर सुहृदय, संवेदनशील कवि जो अभिजात्य वर्ग में जीवन व्यतीत करने के उपरान्त भी निर्धन और आम हिन्दुस्तानी के प्रति अपार प्रेम, सहानुभूति और सद्भावना रखता था, जो मुस्लिम होने और मुस्लिम परिवेश में रहने के बावजूद उस परिवेश और संस्कृति का अपने काव्य में कहीं चित्रण नहीं करता। रहीम तो अकबर के दरबारी नवरत्नों में भी अग्रिम पंक्ति में थे। अब्बक की समन्वयवादी विचारधारा का उन पर गहरा प्रभाव था। सम्भवतः इसी कारण रहीम की प्रासंगिकता को रेखांकित करते हुए राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है— “अकबर ने दीन-ए-इलाही में हिन्दूत्व को जो स्थान दिया होगा, रहीम ने कविता में उसे, उससे भी बड़ा स्थान दिया। प्रत्युत यह समझना अधिक उपयुक्त होगा कि रहीम ऐसे मुसलमान हुए हैं, जो धर्म से मुसलमान और संस्कृति से शुद्ध भारतीय थे।”<sup>3</sup>

रहीम, अपने युग में संघर्षमयी समय के मात्र द्रष्टा भर नहीं थे बल्कि कर्ता-भोक्ता भी थे। वे इतिहास की वीथियों से गुजरते हुए इतिहास पुरुष बने हैं। जो रहीम बादशाह अकबर के नवरत्नों में से एक थे उन्हीं रहीम को बादशाह अकबर के पुत्र जहाँगीर के समय में जेल की सलाखों के पीछे रहना पड़ा। जीवन की विषम परिस्थितियों को झेलने के कारण ही उनका बहुआयामी व्यक्तित्व निर्मित हुआ था। डॉ. नामवर सिंह ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा है— “अब्दुरहीम खानखाना का बड़प्पन इस बात में नहीं है कि वे खानखाना थे। सच तो यह है कि उन्हें बादशाहों की सोहबत से नफरत हो गई थी। वे संत या भक्त भले ही न रहे हों किन्तु उन्हें एक सच्चे भक्त का हृदय मिला था। उनकी धार्मिक उदारता का रहस्य सम्भवतः यही है कि रहीम की हिन्दी कविताओं को पढ़ते समय साधारण जन यह भूल ही जाते हैं कि वे एक आस्थावान मुसलमान थे। रहीम भाव की उस उच्च भूमि पर पहुँच गए थे, जहाँ एक मुसलमान,

मुसलमान होकर भी सिर्फ मुसलमान नहीं रह जाता और न हिन्दू ही हिन्दू रह जाता है। आज के संदर्भ में रहीम की सबसे बड़ी प्रासंगिकता यही है।”<sup>4</sup>

रहीम के दोहे हृदय की सार्वभौम-सार्वकालिक सत्ता को ध्वनित-बिंबित करते हैं। रहीम के अनुभव एकाकी होते हुए भी सबकी मानस-भूमि से जुड़ जाते हैं। उनका निजी अनुभव वर्तमान के आम जन का भी अनुभव बन जाता है। कह सकते हैं कि रहीम की हार्दिकता, आंतरिक टीस-पीड़ा, सार्वजनिक होकर, सर्व-सत्य होने का प्रमाण देती रही है। प्रेम-बैर हो अथवा आंतरिक व्यथा-जन्य कथा, रहीम के अनुभव जन-जन के एकांतिक अनुभव बन उनके दोहों में अभिव्यक्त हुए हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जनसाधारण के मध्य रहीम की लोकप्रियता को देखते हुए लिखा है— “तुलसी के वचनों के समान रहीम के वचन भी हिन्दी-भाषी भूभाग में सर्वसाधारण के मुँह पर रहते हैं। इसका कारण है कि जीवन की सच्ची परिस्थितियों का मार्मिक अनुभव। रहीम के दोहों में मार्मिकता है, उसके भीतर एक सच्चा हृदय झाँक रहा है। जीवन की सच्ची परिस्थितियों के मार्मिक रूप को ग्रहण करने की क्षमता जिस कवि में होगी, वही जनता का प्यारा होगा।”<sup>6</sup>

साहित्यकार के रूप में अब्दुरहीम खानखाना ‘बहुभाषाविद् साहित्यकार’ के रूप में प्रतिष्ठित है। रहीम ने आठ ग्रंथों की रचना की है लेकिन हिन्दी के प्रति उनका प्रेम इस कदर था कि आठ में से पाँच हिन्दी में हैं—

1. बाबरनामा – फारसी में (अनुवाद)
2. दीवाने फारसी– फारसी में (अनुवाद)
3. खेट कौतुक जातकम – फारसी, संस्कृत मिश्रित भाषा में
4. बरवै नायिका भेद – अवधी में (हिन्दी)
5. मदनाष्टक – खड़ी बोली में (हिन्दी)

6. रहीम सतसई – ब्रज भाषा में (हिन्दी)
7. दोहावली – ब्रज भाषा में (हिन्दी)
8. नगरशोभा – ब्रज भाषा में (हिन्दी)

अंतिम पाँचों रचनाओं की भाववस्तु और शिल्पकला के अवलोकन से ज्ञात होता है कि मुगल साम्राज्य का अपराजेय सेनापति रहीम मुसलमान होते हुए भी भारतीय संस्कृति और परम्पराओं का रक्षक है। रहीम भारतीयता से प्रेम करने वाला अद्वितीय हिन्दू है। हिन्दू देवी-देवताओं को सम्मान देने वाला अप्रतिम भक्त है। धर्म-निरपेक्षता का सच्चा अनुपालक है। दान देने में अत्यन्त उदार और ज्ञान का सागर है। रहीम के लिखे दोहे इस ज्ञान सागर के अनुपम मोती हैं। उन्होंने भक्ति और नीति जैसे शुष्क विषयों को कांता सम्मत सरस उपदेश में ढाल दिया है। साथ ही रहीम के दोहे शब्दों की बाजीगरी नहीं है बल्कि सीधी सादी बात सीधे-सादे शब्दों में इस प्रकार कही गई कि वह 'लोक' के हृदय में पैठ बना लेती है। वे कविता में दूरारूढ़ कल्पना का आश्रय लेकर विचित्र बना लेती हैं। वे दूरारूढ़ कल्पना का आश्रय लेकर विचित्र अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का प्रयत्न ही नहीं करते। इसलिए रहीम के दोहे विद्यालय स्तरीय पाठ्यक्रमों से लेकर डी.लिट् जैसे शोधकार्य तक का अभिन्न अंग रहे हैं। मध्यकाल से लेकर इक्कीसवीं सदी के बीच का कोई भी काल रहा हो रहीम का व्यक्तित्व और कृतित्व समाज को दिशा प्रदान करने वाला रहा है। हमारे जीवन में ऐसी बहुत सी बातें होती हैं जिनकी सफलता या असफलता विशिष्ट अनुभवों पर आश्रित होती है। ये 'विशिष्ट अनुभव' चाहे व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व की प्रेरणा से प्राप्त हों या कृतित्व से! ये अनुभव दूसरों का सामाजिक-पारिवारिक जीवन सुखी और सफल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मनुष्य का अनुरागी मन जब काव्य के माध्यम से अनुभवों को ग्रहण करता है तो उसकी जीवन के प्रति निष्ठा

और गहरी हो जाती है। रहीम का काव्य ऐसे अनुभवों का खजाना है। इनमें भारतीय संस्कृति के साथ-साथ विश्व-जीवन भी झाँकता है क्योंकि रहीम ने व्यक्तिगत अनुभवों को मानवता की टकसाल में ढालकर सार्वजनीन और सार्वभौमिक बना दिया है। वे जीवन की सूक्ष्म अनुभूतियों के कुशल चितरे थे। दुनिया भर के सुख-दुःख उनके हृदयांगन में क्रीड़ा करते थे। इस अनुभव को लोकमन तक पहुँचाने के लिए और अपने अनुभवों से तप्त हृदय को शीतलता देने के लिए रहीम दोहा शैली का चयन करते हैं। मात्र दो पंक्तियों में अभिव्यक्त की गई गहरी अनुभूति सूक्ति बन जन-जन का कंठाहार बन चुकी है।

रहीम की सूक्तिमय काव्याभिव्यक्ति पर डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने सटीक टिप्पणी की है— "प्राचीन भारतीय साहित्य से ही सूक्ति की परम्परा चली आ रही है। वह सूक्ति जीवन के निरीक्षण और गहरी अनुभूति से जब उभरती है तो सटीक होती है और तब वह जनजीवन भी स्मृति का ही नहीं बल्कि उसकी मति का भी और उसकी प्रज्ञा का भी अंग बन जाती है। इन सूक्तियों को आदमी केवल याद ही नहीं रखता, उनको जीता भी है और उनसे प्रेरित होकर अपने कर्तव्य का निर्धारण भी करता है। रहीम की सूक्तियों की विशेषता यह है कि उनके सारे दृष्टांत या तो पुराणों से लिये गये हैं या फिर सामान्य जीवन से।"<sup>6</sup> रहीम प्राचीन भारत की सूक्ति परम्परा को नवजीवन देने का कार्य करते हैं। सूक्ति में जीवनानुभव की ठोस जमीन ज्यादा होती है काव्यात्मकता कम किन्तु सामूहिक चेतना की पर्याय लोकानुभूति, स्मृति का सौंदर्य बन सूक्ति में ढल जाती है। रहीम का अधिकांश काव्य सूक्ति काव्य है जहाँ लोक संवेदना लोक लय का 'सम्पुट' बन जाती है। रहीम रचित दोहों की प्रत्येक दूसरी पंक्ति में दृष्टांत भरे हुए हैं जो पूर्व कथन के स्पष्टीकरण का साधन होता है। लेकिन रहीम के दृष्टांत लोक कथा, लोक परम्परा, लोक धर्म से उद्भूत होने के कारण लोक

स्मृति को लोक-ज्ञान में परिवर्तित कर देते हैं। ये दृष्टांत लोक और शास्त्र दोनों का निचुड़ा हुआ अनुभव है। रहीम कहते हैं—

**“रहिमन याचकता गहे, बड़े छोट हवै जात।**

**नारायण हू को भयो, बावन आँगुर गात।।”<sup>7</sup>**

माँगने वाला कैसा भी क्यों ना हो उसके व्यक्तित्व का कद छोटा ही हो जाता है। रहीम इस तथ्य को परम्परा के साक्ष्य से जोड़ते हैं कि याचना तो नारायण (भगवान विष्णु का अवतारी रूप) को भी वामन (छोटे कद का व्यक्ति, बौना) बना देती है। याचक बनकर उन्हें भी जब अपनी विशालता, विराटता त्यागनी पड़ी तो आम आदमी का तो कहना ही क्या? पौराणिक प्रतीकों/संदर्भों का जैसा सार्थक प्रयोग रहीम ने दोहा शैली में किया है वैसी सफलता, किसी अन्य कवि को नहीं मिली है। भारतीय दर्शन में कर्म फल को मनुष्य के सुख-दुःख का आधार बताया गया है। रहीम इस दार्शनिक भाव को भी बड़ी सरलता से अभिव्यक्त कर देते हैं—

**“ज्यों नचावत कठपुतरी, करम नचावत गात।**

**अपने हाथ रहीम ज्यों, नहीं आपुने हाथ।।”<sup>8</sup>**

छोटे-छोटे दोहों में रहीम ने जीवन को व्यावहारिक पक्ष से जोड़कर ज्ञान का अतुल भंडार बना दिया है। छोटे से दोहे में कितनी बड़ी सीख छिपी हुई है कि समझदार मनुष्य को ऋणी, राजा, याचक और काम पीड़ित स्त्री से बचकर रहना चाहिए क्योंकि ये चारों किसी की धमकी से डरते नहीं ना ही किसी प्रकार की प्रार्थना इन्हें पिघला सकती है—

**अरज गरज मानै नहीं, रहिमन ए जन चारि**

**रिनिया, राजा, माँगता, काम आतुरी नारि।।”<sup>9</sup>**

घर-परिवार जीवन मूल्यों का प्रतीक हैं। उन्हें बचाना प्रकारांतर से मूल्यों को बचाना है। साहित्य जब घर बचाने के लिए लिखा जाता है तो हमारे सामाजिक मूल्य भी सुरक्षित हो जाते हैं। मूल्यों

की व्यवस्था को बचाने का संकल्प साहित्य के माध्यम से ही पूरा होता है। साहित्य जब घर, समाज, नजदीकी जीवन और उनसे जुड़े मुद्दों की बात करता है तो घर और समाज साहित्य को अपने से दूर नहीं कर पाते। निर्मल वर्मा ने इसीलिए साहित्य को बिना दीवारों का घर कहा है। मनुष्य अपने ‘मनुष्यत्व’ का साक्षात्कार पहली बार घर में ही करता है। इसीलिए पक्षी जहाँ तिनका-तिनका जोड़कर घर बनाते हैं, पशु भी गुफाओं में, चट्टानों की ओट में, मिट्टी की गोद में अपना घर बना लेते हैं। घर छोटा हो या बड़ा, यह घरवालों का ही नहीं सृष्टि के सम्पूर्णत्व और संस्कृति को भी सुरक्षा देता है। भारतीय संदर्भ में तो ‘घर’ का होना ही एक सांस्कृतिक दर्शन है। घर की मूल धुरी नारी घर बसाने पर अर्द्धनारीश्वर रूप में स्वयं को ही नहीं पुरुष को भी पूर्णता प्रदान करती है। घर लक्ष्य प्राप्ति का शक्ति केन्द्र होता है। सृष्टि विकास की प्रथम सीढ़ी घर में ही होती है। घर हमें स्वाधीन बनाता है, कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों से नियंत्रित करता है। नौका कितनी भी सुदृढ़ क्यों ना हो बिना कर्णधार के वह नदी, सागर को पार नहीं कर सकती। उसी प्रकार ‘घर’ और उसके सदस्यों के सहयोग के बिना हम दुनिया में विजय प्राप्त नहीं करते। इक्कीसवीं सदी के ‘न्यूकलियर फैमिली’ के प्रशंसकों को यह बात समझ नहीं आ सकती। ना ही तिनकों की तरह घर तोड़कर फिर-फिर बसाने की प्रक्रिया में उलझे बुद्धिजीवियों को इस रहस्य को समझने का सूत्र हासिल है।

परिवार सामाजिक जीवन की सबसे छोटी इकाई है तथा व्यक्ति इस इकाई का अनिवार्य सदस्य होता है। यदि इस छोटी इकाई में मूल्यों का ह्रास हो जाए तो क्या बचेगा? प्रश्न यह है कि इन मानवीय मूल्यों की उद्भावना, विकास और संरक्षण कैसे किया जाए? यहाँ निर्विवाद रूप से जो उत्तर सामने आएगा वह है— शिक्षा। शिक्षा ही मनुष्य के भीतर मूल्यों का विकास करती है और आदिम मूल प्रवृत्तियों का परिमार्जन भी।

सदियों तक दुनिया में लोक-कथाओं, लोक गीतों के साथ-साथ, शिक्षालयों ने ज्ञान-मीमांसा के माध्यम से मूल्यों का संवर्धन एवं संरक्षण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हमारे यहाँ तो परिवार से ही इस कार्य का शुभारम्भ होता था। माँ की लोरी बालक को प्रथम संस्कार देती थी। गुरु का घर उसका 'गुरुकुल' होता था लेकिन औद्योगिक क्रांति, विज्ञान और तकनीकी विस्तार ने पूरा परिवर्तन ही बदलकर रख दिया। रही सही कसर सूचना क्रांति और भूमंडलीकरण ने पूरी कर दी है। आज के मनुष्य को शिक्षा क्षेत्र में तकनीकी कुशलता बाह्य जगत में भौतिक उपलब्धियाँ तो दे देती है पर इससे शिक्षार्थी के विवेक और प्रज्ञा शक्ति में विस्तार नहीं होता। नतीजा मानवीय व्यक्तित्व का पतन हो रहा है। समाज में हिंसा का तांडव, घृणा और साम्प्रदायिकता बढ़ रही है। परिवार में सौहार्द का स्थान मन-मुटाव ही नहीं आपसी वैर ने ले लिया है। छोटी-छोटी बातों पर अहं के चलते परिवार टूटने लगे हैं। पति-पत्नी के रिश्ते अर्द्धनारीश्वर की संकल्पना तो दूर आपसी विश्वास, सम्बन्धों की पवित्रता, प्रेम और त्याग की डोर को भी तोड़ बैठे हैं। मानव जीवन भय, कुंठा, संत्रास जैसे नाकारात्मक विचारों का पर्याय बनता जा रहा है। आज के मानव के पास विषम परिस्थितियों में दुलारने, सहलाने, सात्वना देने वाले माँ-बाप, दादा-दादी, नाना-नानी, चाचा-मामा आदि रिश्तों के हाथ ही नहीं हैं, ना ही साँझ ढले थके-हारे घर लौटने पर प्रतीक्षा करती आँखें। 'व्यक्तिगत सफलता' की सीढ़ियाँ चढ़ने वालों के पाँव तले की जमीन कब खिसक जाती है उन्हें पता ही नहीं चलता। आज के ग्लोबल वर्ल्ड में संयुक्त परिवार की संकल्पना तो कब का दम तोड़ चुकी है। अब तो अणु परिवार (न्यूक्लियर फैमिली) की चूल्हे भी हिल चुकी है। घर-परिवार के इस सार्वभौमिक दर्शन को रहीम ने मानों सदियों पहले जान लिया था। वे जानते थे कि संयुक्त परिवारों में बड़ों का दायित्व, कर्तव्य पालन, स्नेह का मेह बरसा कर छोटों को

प्रफुल्लता देता है तो छोटे भी अपने बड़ों को आदर, मान, वृद्धावस्था में सुरक्षा एवं देखभाल की जिम्मेदारी सहर्ष उठाकर जीवन को बोझ नहीं आनंद का पर्याय बना देते हैं। रहीम के दोहे तत्कालीन सामाजिक संरचना के अनुरूप संयुक्त परिवार के रक्षा सूत्र हैं—

**“आवत काज रहीम कहि बाढ़े बंधु स्नेह।**

**जीरन होत न पेड़ ज्यों, यामे बैर बरेह।।”<sup>10</sup>**

घर को 'घर' बनाए रखने के लिए और संयुक्त परिवार बचाए रखने के लिए सावधानी और सहनशीलता का होना अत्यन्त आवश्यक होता है। त्याग और धैर्य सहनशीलता के दूसरे पहलु हैं जिनकी 'घर' को सर्वाधिक आवश्यकता होती है। व्यक्ति को अहं भाव का त्याग करके रुठे हुआ को बार-बार मनाना पड़ता है, तभी नाते-रिश्तों के गुलरस्ते में प्रेम के सदाबहार पुष्प खिले रह सकते हैं। अन्यथा इन फूलों को मुरझाने में और घर में काँटे बिखरने में देर नहीं लगती। सामाजिक-व्यावहारिक चिंतन का यही ऐश्वर्य किसी घर का अंतरंग है। रहीम इस अंतरंगता को अपने दोहों में खूबसूरती से अभिव्यक्त करते हुए, रुठों के मान-मनोबल के साथ घर और समाज के लिए स्पष्ट दिशा-निर्देश भी देते हैं। यह किसी भी युग में मनुष्य को घर को घर बनाए रखने की सभ्य सीख भी है—

**“टूटे सुजन मनाइए, जो टूटे सौ बार।**

**रहिमन फिरि-फिरि पोहिए, टूटे मुक्ताहार।।”<sup>11</sup>**

घर के सदस्यों को मुक्ता माला के समान प्रेम के धागे में पिरोना पड़ता है। मुक्ता माला तो पिरोते समय बिखर सकती है (परिवार के सदस्य रुठ सकते हैं) लेकिन इन मनकों को पिरोने वाला धागा नहीं टूटना चाहिए। धागा यदि टूट गया तो उसमें सदा के लिए गाँठ पड़ जाती है, हो सकता है गाँठ लगे धागे में रिश्तों के मोती पिरोने की क्षमता ही नहीं बचे—

**“रहिमन धागा प्रेम का मत तोड़ छिटकाय।**



टूटे से फिर न मिले, मिले गाँठ परि जाय।।<sup>12</sup>

प्रेम ही वह भाव है जो मानव को मनुष्य बनाता है। यही प्रेम जब निस्वार्थ भाव से प्रकृति और उसके जीव मात्र के साथ किया जाता है तो सम्पूर्ण सृष्टि खिल उठती है। प्रेम जीवन की संघर्षमयी तपन को भी शीतलता में बदल देता है। सच्चा प्रेम तो देना ही देना जानता है, जिसमें मानव 'स्व' की पहचान भी खो देता है। प्रेमी हृदय में भाव का आमृत विद्यमान होता है अभाव का विष नहीं। प्रेम की उगार पर चलने वालों का 'ब्रेकअप' नहीं हो सकता। ब्रेकअप तो स्वार्थ की पूर्ति ना होने पर होता है और जहाँ स्वार्थ है वहाँ प्रेम कहाँ? जो मूर्ख इस अंतर को समझ नहीं पाते वे प्रेम-मार्ग के अधिकारी भी नहीं होते क्योंकि यह प्रेम-मार्ग बड़ा कठिन है। जो इस मार्ग से तनिक भी विचलित हुआ उसे फिर इस मार्ग पर पाँव धरने का अवसर नहीं मिलता—

“रहिमन मागर प्रेम को, मत मतिहीन मझाव।

जो डिगी है तो फिर कहुँ, नहिँ धरने को  
पाँव।।<sup>13</sup>

रहीम जीवन के हर मर्म को जानते थे। विधर्मी और विभिन्न जातीय परिवेश से सम्बद्ध होने पर भी रहीम भारतीय दर्शन में आंकठ डूब गए थे। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के चतुष्टय को मानों उन्होंने जीवन में उतार लिया था। रहीम व्यष्टि से समष्टि और बूँद से समुद्र की यात्रा को बखूबी जान गए थे। इसलिए राजसत्ता के निकट होने पर भी उनके भीतर सत्ता से उपजा घमंड नहीं था। अभिजात्य वर्ग की ठसक से दूर वे आम-आदमी के दुःख-दर्द को दूर करने के लिए मुक्त हस्त से दान करते थे। इसी कारण रहीम अपने युग के दानवीर कर्ण भी कहलाए। रहीम दान में आत्मतृप्ति का भाव रखते थे 'दाता' का भाव नहीं। इनकी दृष्टि में दाता तो केवल ईश्वर है जो मानव को दिन-रात देता है। रहीम स्वयं इस तथ्य को विनम्रता से स्वीकार करते हैं कि—

“देन हार कोई और है, भेजत है दिन-रैन।

लोग भरम हम पे करै, तातैं नीचे नैन।।<sup>14</sup>

रहीम की इसी प्रकृति को देखकर उनके समकालीन हिन्दी और फारसी के अनेक कवियों ने उनकी प्रशंसा में कविताएं लिखी हैं। हिन्दी के कवि गंग ने लिखा—

“सीखे कहाँ नबावजू, ऐसी देनी देन।

ज्यों-ज्यों कर ऊँचों करो, त्यो-त्यो नीचे नैन।।

गंग गोंछ मौँछे जमुन, अधरन सरसुती राग।

प्रकट खानखानाँ भयो, कामद बरन प्रयाग।।”

सत्य तो यह है कि रहीम गंगा-जमुनी संस्कृति के प्रतीक पुरुष हैं जिनकी कविता सभ्यता और संस्कृति में उच्चतर भावों को प्रतिष्ठित करती है। इस अर्थ में रहीम का सृजन आज भी मूल्यवान धरोहर है। यह परम्परामयी आधुनिकता का तेज है। यह तेज सुहृदयों के भीतर आसानी से समाकर काव्य-स्मृति का अंग बन जाता है। इस काव्य-स्मृति को धारण करने का अर्थ है मानव से प्रेम। यह मानव प्रेम ही जीवन के सौंदर्य का पर्याय होता है, जिसकी लोक और उत्तर आधुनिकतावादी समाज में समान रूप से आवश्यकता है। रहीम ने अपने काव्य से मानव को जीवन के सैंकड़ों रंगों से सहज भाव से रंगा है, सही-गलत की पहचान कराई है फिर भी जो दूरदर्शिता के अभाव में अपने पतन और अवनति को न्यौता देकर जागते हुए भी 'सोता' रहे तो उसका मालिक ईश्वर ही है—

“अनकीन्हीं बातें करै, सोवत जागै जोय।

ताहि सिखाय जगायबौ रहिमन उचित न  
होय।।<sup>15</sup>

इतने पक्षों के अवलोकन से स्पष्ट है कि रहीम राजनीतिज्ञ, योद्धा, संदवेदनशील कवि होने के साथ ही एक दार्शनिक भी है जिनका अपना जीवन-दर्शन है। इसी जीवन-दर्शन के कारण

वैभव से जुड़े होने के बावजूद रहीम वैभव के गुण-दोषों को प्रस्तुत करने में सफल हो सके हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है— “इनके (रहीम) दोहों में वैभव के दोष और गुण बहुत स्पष्ट झलकते हैं। भर्तृहरि के श्लोकों की भाँति उनमें जीवन की अनुभूत सच्चाई है और सम्पत्ति मद से विह्वल लोगों के हृदय का यथार्थ चित्रण है। ..... रहीम की रचनाएँ जीवन-रस से परिपूर्ण हैं। मानसिक औदर्य, सांस्कृतिक विशालता और धार्मिक सहिष्णुता के विषय में रहीम की तुलना गिने-चुने लोगों में की जा सकती है। ..... निसंदेह इस कवि का हृदय मानवीय रस से परिपूर्ण और अनासक्त तथा अनाविल सौंदर्य दृष्टि से समृद्ध था।”<sup>16</sup> द्विवेदी जी की बात को बढ़ाते हुए कहा जा सकता है कि जन-जीवन से गहरे जुड़ाव, अनुभवों की गहराई, यथार्थ से सामंजस्य और अपने समय के प्रत्यक्षीकरण के साथ काव्य सृजन करने वाले अबुदरहीम खानखाना वर्तमान की उपभोक्तावादी संस्कृति के बीच अपनी प्रासांगिकता आज भी बनाए हुए हैं। एक ऐसा कवि—जो कल भी प्रेरक था, आज भी प्रेरक है और भविष्य में भी प्रेरक रहेगा।

## संदर्भ

1. श्रीमद्भगवद् गीता, 17-16, गीता प्रेस, गोरखपुर
2. रहीम ग्रंथावली— संप. विद्यानिवास मिश्र एवं गोविंद रजनीश, पृ. 82, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
3. भारतीय संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, पृ. 359, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
4. अब्दुरहीम खानखाना— शेख सलीम अहमद, (दो शब्द— डॉ. नामवर सिंह) पृ. 7, खुसरो किताब घर, दिल्ली,
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 209, ना. प्र. सभा, काशी
6. 6-15. रहीम ग्रंथावली — संपा. विद्यानिवास मिश्र एवं गोविंद रजनीश, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ.सं. क्रमशः 17, 7, 101, 77, 78, 86, 80, 79, 105, 72
16. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली—खंड-3, पृ. 371

Copyright © 2016, Dr. Rachna Bimal. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.